

कथक नृत्य की रचनाओं में बोल-वर्णों की अवधारणा

यास्मीन सिंह

कथक नृत्यांगना, रायगढ़ घराना

पी-एच.डी. स्कॉलर

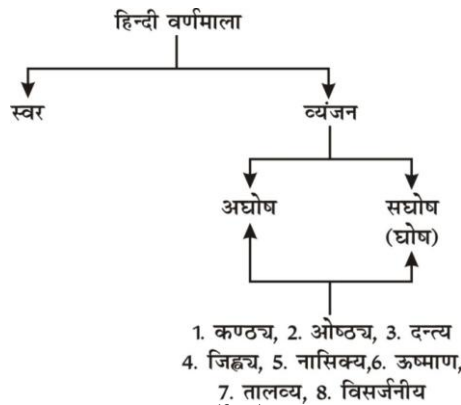
सारांश

कथक नृत्य में प्रयुक्त होने वाले बोल-वर्णों का नृत्य की दृष्टि से तो महत्व है ही, किन्तु इसके साथ-साथ इन बोल वर्णों में भाषायी तत्वों का समावेश, ध्वनि का उतार-चढ़ाव, ताल-लय के अनुसार गति की भूमिका विशिष्ट रूप से समाहित होती है। इसके साथ-साथ कलाकार द्वारा उक्त बोल-वर्णों के अनुरूप ताल और लय पर अंगों के माध्यम से नृत्य प्रस्तुत किया जाता है, जिससे बोल-वर्णों में निहित सौन्दर्य दर्शकों के सन्मुख प्रकट होता है, जिसे कथकाचार्यों ने नृतांग का सौन्दर्य कहा है।

संकेत शब्द :

1. बोल-वर्ण (Bols-words)
2. रचना-पद्धति (Technique of Notation)
3. संकल्पना (Concept)
4. कथक नृत्य (Kathak Dance)
5. घराना (A Tradition)
6. नृत्य शैली (Style of Dance)

नृत्य की शास्त्रीय परम्परा में वाचिक अभिनय का विशेष महत्त्व रहा है। प्राचीन आचार्यगणों ने नृत्य में वर्णाक्षरों के महत्त्व को भली-भाँति समझते हुए इस पक्ष का विस्तृत विवरण अपने-अपने ग्रंथों में उद्धृत किया है। इस दृष्टि नाट्यशास्त्र को प्रथम स्थान पर रखा जाना उचित है। आचार्य भरत ने नाट्यशास्त्र के 15वें अध्याय से 19वें अध्याय तक वाचिक अभिनय का वर्णन किया है, जिसमें उन्होंने हिन्दी वर्णमाला के अक्षरों को वर्गीकृत किया है। प्रथमतः 15वें अध्याय में भरत ने स्वर और व्यंजन बताये हैं, जिसमें 'अ' से प्रारंभ होने चौदह वर्णसमूहों को 'स्वर' एवं 'क' से 'ह' तक के वर्णों को 'व्यंजन' कहा है। व्यंजन को पुनः 'अघोष' और 'सघोष' दो वर्गों में विभाजित किया है। भरतमतानुसार व्यंजन के प्रत्येक वर्ग में आने वाले प्रथम दो वर्ण अघोष और शेष वर्ण सघोष (या घोष) कहलाते हैं। आचार्य ने अघोष और सघोष के भी आठ भेद बताये हैं, जो निम्नांकित चित्र से स्पष्ट है—



नाट्यशास्त्र में 'क', 'च', 'ट' आदि व्यंजन-वर्णों को निम्नांकित तालिका के अनुसार विभाजित किया है—

कण्ठ्य	क, ख, ग, घ, ङ
तालव्य	च, छ, ज, झ
मूर्धन्य	ट, ठ, ड, ढ, ण
दन्त्य	त, थ, द, ध, न
ओष्ठ्य	प, फ, ब, भ, म

उक्त वर्णित वर्णों के विभाजन को कथक नृत्य में प्रयुक्त होने वाले बोल-वर्णों की रचना प्रवृत्ति के अनुसार देखा जाए, तो बहुधा 'दन्त्य' वर्ग अर्थात् 'त, थ, द, ध, न' अधिकांशतः प्रयोग किया जाता है, जैसे—

त	ता, तत्, तिग्धा
थ	थेई
द	दिगदिग
ध	धा

कथक नृत्य की प्रारंभिक रचना या बोल के रूप में 'ता थेई तत्' को लिया जाता है, जिसे कथक गुरु लय-ताल में निबद्ध कर इस नृत्य की प्रारंभिक शिक्षा देते हैं। कथक के इन बोल वर्णों को यदि भरत द्वारा बताये स्वर-व्यंजनादि लक्षणों के आधार पर देखा जाए, तो ज्ञात होता है कि बोल-वर्ण मूलतः दन्त्य वर्णों और स्वर के सम्मिश्रण से निर्मित किये गये हैं जैसा कि साधारणतः शब्द निर्मित होते हैं।

'त' के साथ 'आकार' (त+आ) के प्रयोग से 'ता' की व्युत्पत्ति की गई। कथक नृत्य अथवा नृत्य सिद्धान्त में 'ता' को विशेष स्थान प्राप्त है। सर्वप्रथम तो विद्वानों ने 'ता' वर्ण को ताण्डव नृत्य के प्रतिनिधि शब्दाक्षर के रूप में ग्रहण किया है। इसी प्रकार कुछ ने 'ता' से ताल और 'तारवाद्य' शब्दों की कल्पना भी की है, जो संगीत (गायन, वादन, नृत्य) में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। कथक नृत्य में 'ता' को प्रायः विद्वानों ने प्रथम और विशिष्ट स्थान दिया है। डॉ. जयचन्द्र शर्मा 'ता' से ही 'धा' की भी उत्पत्ति मानते हैं, जो कि कथक नृत्य की रचनाओं का एक प्रमुख बोलवर्ण है। डॉ. शर्मा के अनुसार— स्वरवाद्यों एवं ताल वाद्यों की ध्वनि में मिलकर इसकी ध्वनि में विशेष ओज आ जाने पर इसका स्वरूप 'ता' से 'धा' बन जाता है। 'धा' की ध्वनि का आन्दोलन अधिक प्रभावशाली होने से यह मानव को अधिक आकर्षित करता है। अतः इसे स्थिर ध्वनि वाला अक्षर माना गया है।

'ता' के पश्चात् बोल-वर्णों में 'थेई' को स्थान प्राप्त है और हिन्दी वर्णमाला के अनुसार भी 'त' के बाद 'थ' का ही स्थान है। 'त' और 'थ' हिन्दी वर्णमाला के 'त' वर्ग के प्रथम दो वर्ण हैं, जिन्हें भरत ने 'अघोष' कहा है। 'थेई' की संरचना में 'थ + ए + ई' का मिश्रण है, जिसे भरत द्वारा बताये गये वर्ण-सिद्धान्त के अनुरूप निम्नानुसार समझा जा सकता है—

थेई	थ	ए	ई
भरतानुसार	अघोष	ह्रस्व	दीर्घ

'थेई' शब्द ईकारात्मक है। अतः विद्वानों ने इसे लास्य से जोड़कर देखा है। कथक की रचनाओं— तोड़ा, टुकड़ा, परन आदि में 'ता' के साथ-साथ 'थेई' का भी प्रयोग होता है, किन्तु 'थेई' की अधिकता रचना को लास्य अंग प्रधान बना देती है। कथक में प्रयोग के दौरान 'थेई' की निकासी बायें पैर से की जाती है। चूँकि 'ता' के बाद 'थेई' का स्थान निश्चित है, अतः विद्वानों ने इसे पार्वती से जोड़कर भी देखा है। ध्यातव्य है, कि 'ता' वर्ण को जिस 'ताण्डव' नृत्य से जोड़कर देखा गया है, की उत्पत्ति शिव माने गये हैं। स्वयं भरत ने भी नाट्यशास्त्र में इस बात का उल्लेख किया है। अतः इसी आधार पर 'थेई' को स्त्रीसूचक मानते हुए इसका सम्बन्ध पार्वती से जोड़ा जाना भी उक्त अवधारणा को ही पुष्ट करता है। स्त्री से तात्पर्य लास्य से भी है। अतः इस दृष्टि से 'थेई' को सीधेतौर पर लास्य का सूचक मान लिया गया है, जो उक्त तर्कों पर आधारित है और इसीलिए कथक की जिन रचनाओं में 'थेई' की अधिकता होती है, उन रचनाओं में लास्य अंग विशेष रूप से लक्षित होता है। ऐसी रचनाओं में 'थेई' पर ही सम दिया जाता है, उदाहरण—

तत्	तत्	थेई	—	तत्	तत्	थेई	—	थेई	तत्	थेई	—	तत्	थुन	तत्	थुन
x				2				0				3			
तत्	तत्	थेई	—	त्राम	—	थेई	—	ता—	—	थेई	—	तत्	तत्	थेई	—
x				2				0				3			
धा—	क्त	धा—	क्त	धा—	क्त	धा—	क्त	थेई	यथे	ईय	थेई	थेई	थेई	तत्	त्राम
x				2				0				3			
थेई	—	—	थेई	थेई	थेई	तत्	त्राम	थेई	—	—	थेई	थेई	थेई	तत्	त्राम
x				2				0				3			

।थेई।।

उक्त रचना जयपुर घराने की है। इस रचना में 'थेई' का प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक है तथा सम भी 'थेई' पर दिया गया है। प्रायः जयपुर घराने की रचनाओं में ताण्डव अंग की प्रधानता होती है, किन्तु उक्त आमद में 'थेई' की बाहुल्यता इसे लास्य की ओर ले जा रही है। स्वाभाविक रूप से 'थेई' में एक प्रकार की गति आभासित होती है। रचना में स्थान-स्थान पर 'थेई' के साथ अवग्रहों (ऽ) के प्रयोग से इसकी गति को बढ़ाया गया है। यानि 'थेई' की स्वाभाविक गति के साथ अवग्रह भी जोड़ दिये गये हैं। विद्वानों का मत है, कि 'थेई' अक्षर 'ता' का पूर्ण सहायक होकर आगे बढ़ता है। यह चंचल प्रकृति होने से लय में चमत्कार दर्शाता हुआ दर्शकों का मनोरंजन करता है। स्त्रित्व की प्रधानता होने से यह 'ता' के अंकुश में रहकर आगे बढ़ता है। अपने मधुर स्वभाव के कारण यह सभी को प्रिय है। अतः हर रचना में इसका स्थान सुरक्षित है। इस अक्षर को रसोत्पादक ध्वनि माना गया है।

'तत्' इस क्रम में तीसरा प्रमुख अक्षर है। 'तत्' शब्द सर्वप्रथम 'ता' और 'थेई' से निबद्ध रचना को पूर्णता प्रदान करता है। 'तत्' में 'त' समाप्ति का सूचक है, तो वहीं 'त्' एक नई श्रृंखला के जन्म की सम्भावना उत्पन्न करता है। प्रयोग के दौरान पैर की ऐड़ी से धीरे से आघात करने पर जो ध्वनि उत्पन्न होती है, उसे कथकाचार्यों ने 'तत्' अक्षर कहा है। यह अर्धध्वनि उत्पादक तथा रचना को आगे बढ़ाने में योग देने वाला अक्षर है। विद्वानों को मानना है, कि 'तत्' से रचना की विविध लय प्रयोग होते रहते हैं, जिससे रचना आगे बढ़ती है। यह अक्षर रचना प्रधान ध्वनि वाला माना गया है।

कथक नृत्य के नृत्तांग में जहाँ एक ओर 'ता', 'थेई' और 'तत्' की महत्वपूर्ण भूमिका है, वहीं इस नृत्य का प्रारंभिक प्रशिक्षण भी इन्हीं तीन वर्णाक्षरों से प्रारंभ होती है। चूँकि कथक नृत्य का सम्बन्ध आध्यात्म से भी है और पूर्व में जिस प्रकार विद्वानों ने 'ता' और 'थेई' वर्णाक्षरों को शिव और पार्वती से जोड़कर देखा है, उसी प्रकार ब्रह्मा, विष्णु और महेश को क्रमशः सृष्टिकर्ता, पालनकर्ता और संहारकर्ता के रूप में देखा जाता है। कथक नृत्य में उत्पन्न होने वाली समस्त ध्वनियाँ इन्हीं तीन अक्षरों 'ता', 'थेई' और 'तत्' पर आधारित है। इस प्रकार ता, थेई और तत् को रचना या बंदिश का स्वरूप "ता थेई थेई तत् आ थेई थेई तत्" इस प्रकार निर्मित किया जाता है, जिसे आध्यात्मिकता से जोड़कर देखा जाए तो ब्रह्मा के सादृश्य 'ता' भी प्रारंभ का सूचक है अर्थात् रचना की सृष्टि का कारक है। 'थेई' अपनी प्रकृति के अनुरूप गति का सूचक है अर्थात् जिस प्रकार विष्णु जीवन को गति प्रदान करते हैं उसी प्रकार 'थेई' भी रचनाओं को गति प्रदान करता है। अन्त में है 'तत्', जो एक ओर तो समाप्ति की सूचना देता है, किन्तु वह समाप्ति पुनः नवीनता की संकल्पना को साकार करता है अर्थात् शिव। 'ता', 'थेई' और 'तत्' बनने वाले उक्त बंदिश के स्वरूप को कथक नृत्य की रचना का सूत्र भी माना जा सकता है, क्योंकि चाहे कथक में जितनी भी रचनायें प्रयुक्त हों, उनकी मूल संकल्पना में यह सूत्र विद्यमान रहता है।

'ता', 'थेई' और 'तत्' के अतिरिक्त कथक नृत्य में प्रयुक्त होने वाली रचनाओं में अनेक भिन्न-भिन्न कूटाक्षरों का प्रयोग होता है। ये सभी कूटाक्षर हिन्दी वर्णमाला के व्यंजन के विभिन्न वर्गों पर आधारित हैं तथा रचना निर्मिति के दौरान महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। हिन्दी वर्णमाला के अनुसार प्रयुक्त होने वाले बोलवर्ण निम्नानुसार हैं—

कण्ठ्य	क ख ग घ	— केकेके, किङनग, किन किन, किंकितट, किट किट, कुकु, कुण — खिरकिट, खिटकिन, खरी खरी, खननन, खररर — गदिगन, गिरकिड, गिझी गिझी, गिङनम, गेगेतट — घननन, घूघूकिट, घेघेनाड़ा, घेघेघेघे, घिनातूना
तालव्य	च छ ज झ	— चमक, चिचिरी, चमचम, चकचिरी, चेंहचूचू — छलक, छिटक, छमक, छननन, छलकत, छूमकिटी — जगजग, जिगथोम, जिनकिटी, जिनजिन, जनकता — झनक, झनकिट, झांगिरी, झननन, झन झन
मूर्धन्य	ट ड	— टन, टित, टगुन, टमक, टंकण — डिग, डिम, डिमक, डिबिक, डिडिकता, डमडम, डिङड
दन्त्य	त थ द ध	— तत्, तन, तकत, तकिट, तक तक — थरि, थुंगा, थेईया, थुंगिन, थकत — दिगदिग, देदे, दिनक, दमक, दिरदिर — धा, धग, धड़, धमक, धिनक, धाधिकत

	न	— नन, नक, नगन, नातिट, नग नग
ओष्ठ्य	प	— पप्प
	फ	— फप्फ, फुफु
	ब	— —
	भ	— भुनक, भम्भ
	म	— मम्म

रायगढ़ घराने की रचनाओं पर दृष्टिपात करें तो ज्ञात होता है, कि इस घराने की रचनाओं में बोल-बंदिशों की रचना-निर्मिति कुछ विशिष्ट है। इस घराने की कुछ रचनाओं में 'कण्ठ्य' और 'ओष्ठ्य' वर्ग के वर्णाक्षरों का प्रयोग विशेष रूप से लक्षित होता है, जैसे—

कण्ठ्य प्रधान बोल वर्णों से निर्मित रचना—

कुटकु	टटकु	थरिकु	थरिकिण	ककिणक	कितकिण	कितकिण	खरतखि
×				2			
रतखिर	किटखिर	किटचर	टचरट	चिनकिट	चिनकिट	झिनकझि	नकझिन
0				3			
किटझिन	किटकिट	ता-थेई	तत्थेई	थेईतथे	ईतथेई	थेईथेई	तत्त्राम्
×				2			
ता—	—थेई	थेईथेई	तत्त्राम्	ता—	—थेई	थेईथेई	तत्त्राम्
0				3			
॥ ता							
॥							
×							

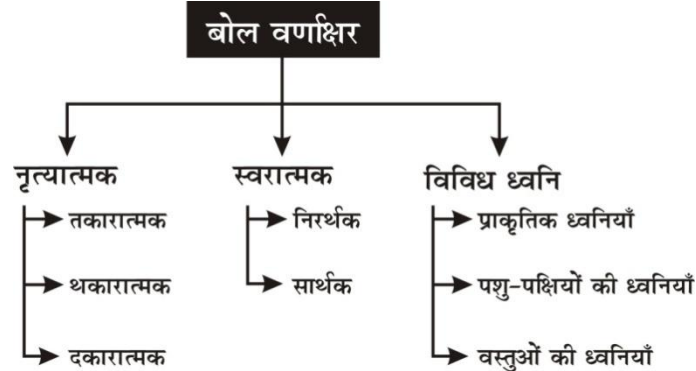
ओष्ठ्य प्रधान बोल वर्णों से निर्मित रचना —

फफफफफ	फररर	भम्भभम्भ	भननन
×			
पप्पपप्प	पुणकिट	बब्बबब्ब	बननन
0			
मम्ममम्म	मननन	डिड्डडिड्ड	डननन
×			
डिनकडि	नकडिन	किनडिन	किनडिन
0			
भुनकभु	नकभुन	किनभुन	किनभुन
×			
चिनकचि	नकचिन	किनचिन	किनचिन
0			
फुफुथेई	—फुफु	थेई—	फुफुथेई
×			
—फुफु	थेई—	फुफुथेई	—फुफु
0			
॥ थेई ॥			
×			

उक्त वर्णित शब्दों के अतिरिक्त अन्य ऐसे बहुत से शब्द प्रायः लिये जाते हैं, जो बोल रचना निर्मिति को एक नया स्वरूप प्रदान करने में सक्षम हैं। इसी क्रम में एक अन्य शब्द 'त्राम्' है। उछलने की क्रिया से उत्पन्न होने वाले इस शब्द में पुरुषत्व की प्रधानता है, अर्थात् यह शब्द ताण्डव नृत्य का द्योतक है। इसके समकक्ष अन्य शब्दों में— थ्रॉंग, क्रॉ, कर्डॉन, धड़ान, तड़ान, धिलांग, गिड़ान आदि हैं, जिनके प्रयोग से रचनाओं

में एक प्रकार का पुरुषत्व प्रधान चमत्कार उत्पन्न होता है। नाचे जाने पर ये शब्द विशेष सौन्दर्य की निर्मिति में भी सहायक होते हैं।

रचनाओं में शब्दों के साथ-साथ एवं उनके समानान्तर ध्वनि का प्रयोग होता है। अर्थात् वर्णों या उन वर्णों से निर्मित कूटाक्षरों के उच्चारण से निकलने वाली ध्वनि के आधार पर रचनाओं की निर्मिति किया जाना अनिवार्य है। नृत्य के दौरान बोलों की निकासी पैरों के माध्यम से होती है, जो लय और ताल पर आधारित होते हैं। विद्वानों ने पृथक्-पृथक् ध्वनि से अलग-अलग बोल-शब्दों की कल्पना की तथा उन्हें सार्थक स्वरूप प्रदान किया। इन ध्वनियों में पदाघात से उत्पन्न ध्वनि, घुँघरुओं से उत्पन्न ध्वनि, स्वर-ध्वनि, ताल-ध्वनि, शब्द-ध्वनि और अन्य विविध ध्वनियों का आश्रय लिया गया। इस प्रकार ध्वनि विविधता नृत्य में विशेष रूप से पायी जाती है, अतः नृत्य की रचनाओं का मूलाधार ध्वनि ही है। ध्वनि से उत्पन्न बोलों में नृत्यात्मक, स्वरात्मक, शब्दात्मक, तालात्मक के साथ-साथ ऐसे बोल वर्णों का समावेश बीच-बीच में किया जाता है, जिनसे रचना में चमत्कार, विशेष आकर्षण या किसी विशेष ध्वनि का समावेश हो। साधारणतः बोल-रचनाओं में चमत्कार एवं आकर्षण रेफ (,) या चन्द्रबिन्दु (°) के साथ 'न', 'ण' जैसे वर्णों से विशेष रूप से उत्पन्न होता है। इसके अतिरिक्त विद्वानों ने कथक नृत्य में प्रयुक्त होने वाले कूटाक्षरों या बोल-वर्णाक्षरों को विभाजित किया है, जिसे निम्नांकित आरेख के माध्यम से समझा जा सकता है—



कथकाचार्यों ने बोल-वर्णों को ध्वनि के आधार पर तीन मुख्यतः भागों में विभाजित किया है— नृत्यात्मक, स्वरात्मक और विविध ध्वनि। 'नृत्यात्मक' में नृत्य के उन बोलों का प्रयोग किया जाता है, जिनमें नृत्य की स्वाभाविक ध्वनि है तथा इसमें 'त' वर्ग के शब्दों का विशेष रूप से प्रयोग किया जाता है, जैसे— ता थेई, तत् थेई, तिगदा दिगदिग, थेई तत् त्राम् आदि। नृत्यात्मक शब्दों को विद्वानों ने पुनः तीन भागों में विभक्त किया है— प्रथम, 'तकारात्मक' अर्थात् वे शब्द जिसमें तत्, ता, त्राम् आदि आदि बोलों की प्रधानता के साथ-साथ रचना के प्रारंभ एवं मध्य में इनका विशेष प्रयोग हो। द्वितीय, 'थकारात्मक' बोल अर्थात् ऐसे शब्द जिनमें 'थ' अक्षर विशेष होता है, जैसे— थेई, थुँ, थिरकत आदि। तृतीय प्रकार के शब्दों को 'दकारात्मक' बोल की संज्ञा प्रदान की गई है। इस वर्ग में 'द' वर्ण युक्त शब्दों की प्रधानता होता है, जैसे— दिगदिग, दिगधा, दिनतक आदि। कथक नृत्य में पखावज एवं तबले के शब्दों को प्रयोग विशेष रूप से होता है, जिससे बोलों को विशेष बल मिले या उनका आकर्षण बना रहे।

उक्त वर्णित सभी बोल-वर्णों को परम्परागत रूप से तबला और पखावज में बजाये जाते हैं। पखावज में प्रायः गंभीर, वीर-रौद्र रस और ताण्डव अंग प्रधान वर्णों से युक्त बोल-बंदिशों वादन किया जाता है, जबकि तबला विशेष रूप से लास्य प्रधान बोल-बंदिशों के वादन में उपयुक्त माना जाता है। 'संगतकार तबले या मृदंग पर इन्हीं बोलों की संगत में जब समान ध्वनि के तबले मृदंग के बोलों का बजाता है, तो इसका प्रभाव मंत्रमुग्ध कर देने वाला होता है। इसमें कभी-कभी नर्तक तथा संगतकार ताल वादक परस्पर प्रश्न-उत्तर के रूप में भी इन बोलों को विभिन्न लयकारियों, तिहाईयों, चक्करदार आदि के साथ प्रस्तुत करते हुए चमत्कारिक प्रदर्शन करते हैं।

'स्वरात्मक' शब्द अर्थात् गायन या स्वर वाद्यों से उत्पन्न ध्वनि की सहायता से विशेष आकर्षण उत्पन्न किया जाता है। साथ-ही-साथ इस प्रक्रिया में स्वरों के उठान, खिंचाव तथा स्वरान्दोलन का भी विशेष योग होता है। विद्वानों ने स्वरात्मक बोलों को निरर्थक शब्द और सार्थक शब्द नामक दो भेद निरूपित किये हैं। यहाँ निरर्थक शब्द अर्थात् अर्थहीन शब्द जो पूर्णतः ध्वनि पर आधारित हों। सार्थक शब्द से आशय

ऐसे शब्दों से है, जिनका भाषागत अर्थ हो। रचनाओं में निरर्थक शब्दों के साथ सार्थक शब्दों को बांधते हुए बंदिश का स्वरूप दिया जाता है। ऐसी रचनाओं को कथकाचार्यों ने 'कवितांगी' कहा है।

तीसरा प्रकार 'विविध बोलों' का है, जिसे पुनः तीन भागों में बांटा गया है। प्रथम प्रकार प्राकृतिक बोलों का है। इसके अंतर्गत बादलों की गर्जना, बिजली का कड़कना और नदियों के कलकल आदि प्राकृतिक ध्वनियों के आधार पर कूटाक्षरों की रचना की जाती है, जैसे—गड़गड़, दमदम, दिमकत आदि। दूसरा प्रकार पशु-पक्षियों की ध्वनियों पर आधारित है, जैसे—ककु ककु, फर्रर, कुटट कुटट कूकू आदि। सामान्यतः उक्त वर्णित बोल-शब्दों का प्रयोग जयपुर और रायगढ़ की रचनाओं में विशेष रूप से परिलक्षित होता है। इनके अतिरिक्त दैनिक जीवन में उपयोग की जाने वाली वस्तुओं की ध्वनि के आधार पर बोल-वर्णों का सृजन किया जाता रहा है, जैसे—खट खट, पट पट, ठप ठप, टक टक आदि। प्रयोगकर्ताओं ने परम्परा के निश्चित सीमा में रहते हुए ध्वनि के आधार पर नवीन शब्दों का रचनात्मक प्रयोग कथक नृत्य की बंदिशों में किया।

निष्कर्षतः कथक नृत्य में प्रयुक्त होने वाले बोल-वर्णों का नृत्य की दृष्टि से तो महत्व है ही, किन्तु इसके साथ-साथ इन बोल वर्णों में भाषायी तत्वों का समावेश, ध्वनि का उतार-चढ़ाव, ताल-लय के अनुसार गति की भूमिका विशिष्ट रूप से समाहित होती है। इसके साथ-साथ कलाकार द्वारा उक्त बोल-वर्णों के अनुरूप ताल और लय पर अंगों के माध्यम से नृत्य प्रस्तुत किया जाता है, जिससे बोल-वर्णों में निहित सौन्दर्य दर्शकों के सन्मुख प्रकट होता है, जिसे कथकाचार्यों ने नृत्तांग का सौन्दर्य कहा है।

संदर्भ :

1. शास्त्री, बाबूलाल शुक्ल, भरतमुनि विरचित नाट्यशास्त्रम्, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, भाग-2, प्रथम संस्करण संवत् 2040
2. शास्त्री, बाबूलाल शुक्ल, भरतमुनि विरचित नाट्यशास्त्रम्, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, भाग-1, द्वितीय संस्करण संवत् 2040
3. शर्मा, डॉ.जयचन्द्र, घुँघरू के बोल, श्री संगीत भारती शोध विभाग, बीकानेर, प्रथम संस्करण 1970
4. संगीत, नृत्यकला अंक, जनवरी 2016, संगीत कार्यालय, हाथरस

